

साहित्य के सामाजिक सरोकार

सारांश

‘साहित्य’-शब्द, अर्थ और भावनाओं की वह त्रिवेणी है जो जनहित की धारा के साथ उच्चादर्शों की दिशा प्रवाहित होती है। साहित्य जनता के जीवन की व्याख्या करता है। साहित्य में जीवन और समाज की अभिव्यक्ति और उनकी वास्तविकता दानों होती हैं। साहित्य-सृजन को समाज से जोड़कर उसे यथार्थवाद अथवा आदर्श-सूत्र यथार्थवाद की शब्दावली में परिभाषित किया गया है। साहित्य का उद्देश्य शोषण से मुक्ति, साम्राज्यवाद से मुक्ति और वर्गहीन समाज की सृष्टि है। साहित्यकार समाज का एक अभिन्न अंग है।

मुख्य शब्द : साहित्य, साहित्यकार, समाज, सामाजिक विचार, भावनाएँ
प्रस्तावना

साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। चूँकि साहित्य की रचना का मूल आधार सामाजिक जीवन ही है। साहित्य समाज की एक-एक परिस्थिति उसकी सजग दृष्टि से होकर गुजरती है। इसी कारण विद्वानों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। साहित्य के संदर्भ में महाकवि गेटे का मत है कि –“लिटरेचर इज दि ह्यूमिनाईजेशन ऑफ दि वर्ल्ड।”¹ अर्थात् साहित्य अखिल विश्व का मानवीकरण है।

साहित्य के संबंध में डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णय का मत है कि—“भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने विविध प्रकार से साहित्य की परिभाषा देने की चेष्टा की है। सामान्यतः ‘साहित्य’ शब्द का तीन अर्थों में प्रयोग होता है। प्रथम अर्थ के अंतर्गत मानव जाति के संचित ज्ञान विज्ञान से संबंधित समस्त ग्रंथ समूह को ही साहित्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह साहित्य शब्द का शिथिल प्रयोग है। द्वितीय अर्थ के अनुसार अलंकार आदि से संबंधित शास्त्रीय ग्रंथ ही साहित्य की उपाधि से विभूषित कर दिए जाते हैं। सामान्यतः हम साहित्य का प्रयोग शब्दार्थ और शब्द-गौरव से युक्त ललित साहित्य अर्थात् काव्य, नाटक, कहानी, निबंध आदि के लिए करते हैं।”²

साहित्य और समाज का संबंध अनादि काल से चला आ रहा है। साहित्यकार अपने साहित्य में मनुष्य के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य की अनेक आकांक्षाओं को अपने में समेटे हुए होता है। डॉ. अमित शुक्ल के शब्दों में – “साहित्य मानव समाज और लोक जीवन, लोक साहित्य, लोक चेतना एवं लोक संस्कृति के माध्यम से ही संभव है। अतः लोक चेतना साहित्य की सर्जनात्मक कल्पना है।”³

समाज की परिकल्पना संस्कृति, व्यक्तित्व तथा धर्म से पृथक करके नहीं की जा सकती। सामाजिक परिवेश के बिना व्यक्तिगत जीवन की अवधारणा असम्भव है। जिस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं उसी प्रकार साहित्य और जीवन का भी सीधा संबंध है। व्यक्ति के हृदय में जब विचारों के उतार-चढ़ाव की एक शृंखला बनती है तो साहित्य के सृजन की प्रक्रिया स्वतः ही आरम्भ हो जाती है तथा समय के साथ-साथ अमूर्त विचार शब्दों में ढलने लगते हैं। साहित्य के सृजन का मुख्य धर्म ही मानवीय परिस्थितियों, उसके परिवेश, उनके सरोकारों और सुख-दुःख से जुड़ाव है इसलिए साहित्य भले ही एकांत क्षणों में अपनी कृति का सर्जन करता हो परन्तु समाज और मनुष्य के जीवन को कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता है।

साहित्यकार का उत्तरदायित्व बहुत व्यापक और महान् होता है क्योंकि लेखक के विचारों की अच्छाई या बुराई समाज की अच्छाई या बुराई को प्रभावित करती हैं। प्रो. शलभ का मत है कि “कोई रचना मनुष्य के अंतर्जगत् को कितनी गहराई तक प्रभावित करती है, उसे कहाँ तक परिचालित करती है और उसे अपने गंतव्यपथ पर अग्रसर होने की कितनी शक्ति देती है। यह सब उसकी सृजनात्मकता पर निर्भर करता है। रचनाकार का जीवनानुभव जितना गहरा और कलात्मक सृजनशीलता लिए होगा तथा निवैयक्तिक और व्यापक होगा उतना ही वह असरदार भी होगा।”⁴

कामिनी ओझा

सहायक आचार्य,

हिन्दी विभाग,

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,

जोधपुर (राजस्थान)

साहित्य का सामाजिक सरोकारों से किसी न किसी रूप में परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य में इन्हीं समाजों में होने वाली परिवर्तन, प्रक्रिया, मानव के क्रियाकलापों-गतिविधियों, मनुष्य के अतीत उसके विकास, मनुष्य के अन्तर्भावों, मान्यताओं और विश्वासों और समस्याओं को कलात्मक रूप में दर्शाया जाता है, साथ ही साहित्य तद्युगीन आशा-आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुकूल परिवर्तन एवं जीवन पद्धतियों एवं सामाजिक व्यवस्था में सुधार हेतु आह्वान भी करती है। हिन्दी साहित्य के वीरगाथाकाल की सभी साहित्यिक रचनाएँ वीर-रस से ओतप्रोत हैं। भक्तिकाल में मुगलों के शासन से निराश जनता में भक्ति-भावना का उदय होता है। इसी प्रकार रीतिकाल आदि की रचनाएँ भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना न रह सकीं। वर्तमान समय में भी साहित्यकार की रचनाओं में क्रान्ति और विद्रोह का स्वर गूँज उठा है।

संसार के अनेक महान् साहित्यकारों ने मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का निरूपण करके महानता अर्जित की है। इससे यह अर्थ निकलता है कि साहित्य का मूल आधार मनुष्य और समाज ही है। अनेक महापुरुष समय-समय पर अवतीर्ण हुए जिन्होंने समकालीन समाज को प्रभावित किया तथा मानव कल्याण के लिए प्रेरणा के स्रोत बने परन्तु बहुत कम ऐसे थे जिन्होंने अपने देश/क्षेत्र के बाहर भी अपने चरित्र-सिद्धान्त कार्य से आदर्श स्थापित किया और विश्व स्तर पर सैकड़ों एवं हजारों से आदर्श स्थापित किया और विश्व स्तर पर सैकड़ों एवं हजारों वर्षों से आज तक संसार का मार्ग दर्शन कर रहे हैं। लोग उन्हें आदर्श मानते हैं, उनकी पूजा करते हैं तथा उनके उपकार के लिए कृतज्ञता के गीत गाकर श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। कबीर ऐसे ही महापुरुष थे जो युग-प्रवर्तक, युग-पुरुष, संत, महात्मा, भगवान, भक्त आदि नामों से पुकारे जाते हैं। देशकाल की सीमा लांघकर विश्व-भर में असीम जनता के बीच आकर्षण का केन्द्र है। वे सभी पृथक-पृथक समाज, वातावरण और संस्कृतियों में पले-बढ़े फिर भी विश्व भर के लिए मुक्तिदाता हैं। कबीर ने कहा है - "मैं मैं मेरी जनी करे, मेरी मूल निवास मेरी पग का पखेड़ा मेरी गल की पास।"⁶⁵ अर्थात् 'मैं पन' की भावना का त्याग किए बिना सुख शांति की उपलब्धि संभव नहीं है। अतः कबीर का साहित्य पथ-प्रदर्शक का काम करता है और सभी के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

संत कवि तुलसीदास जी ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रामराज्य की स्थापना को एक परिवार के रूप में हिन्दू समाज के सम्मुख आदर्श स्थापित किया है। जिस प्रकार का समाज होगा ठीक उसी प्रकार का साहित्य रचा जाएगा इसलिए समाज में गतिशीलता लाना अनिवार्य है ताकि समाज विकृत न हो। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार-"लेखक को संसार की वर्तमान समस्याओं को ठीक-ठीक समझना चाहिए और शांत चित्त से सोचना चाहिए कि मनुष्य को मनुष्यत्व के लक्ष्य तक ले जाने में कौनसी शक्तियाँ सहायक हैं और कौन-कौन सी बाधक। फिर उसे सहायक शक्तियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करनी चाहिए और बाधक तत्त्वों के प्रति विरक्ति।"⁶⁶

साहित्यकारों का हमारे ही विचारों का प्रतिनिधित्व कर मानव-जीवन की विविध समस्याओं, राजनीतिक विकृतियों, घटनाओं, उतार-चढ़ाव, मजदूर व किसान आन्दोलनों, जीवन के सुख-दुःख एवं विचारणाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में करनी चाहिए। साथ ही मानव सामाजिक लक्षण मानवीय जीवन के समान ही संगठित, गतिशील एवं परिवर्तनशील है। "किसी भी समाज को समझने के लिए उसके विभिन्न अंगों, व्यक्ति, परिवार, समूह, वर्ग-वर्ण, शहरी या ग्रामीण जीवन अथवा राज्य को देशकाल के संदर्भों में परखना होगा। साथ ही सामाजिक अन्तः क्रियाओं तथा उनमें व्याप्त विभिन्न आध्यात्मिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक चेतना का अनुशीलन भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उपयोगितावादी मनोरंजनात्मक संस्थाओं और उनमें व्याप्त आपसी द्वन्द्वों एवं अन्तर्विरोधों की विविधता, बहुलता और पूरकता का विश्लेषण भी अपेक्षित होगा।"⁶⁷

लेकिन आज के समय में साहित्य की सबसे बड़ी चुनौती बाजार से और विज्ञान के प्रयोग से आ रही है। एक साहित्यकार के लिए शब्द कभी मरते नहीं और विचार कभी डरते नहीं हैं। एक मनुष्य अर्थात् एक साहित्यकार मिट जाता है किन्तु साहित्य में मनुष्य और समय की परम्परा निर्बाध चलती रहती है। आज की मुख्य आवश्यकता संसार की सोच बदलने की है और साहित्य यह सोच में बदलाव लाने की क्षमता रखता है। "जयशंकर प्रसाद के 'आंसू' हो या पंत या शैली के दुःख की वर्षा करते जलधर, निराला की 'वह तोडती पत्थर' की श्रम प्रतिमूर्ति, प्रेमचंद का होरी हो या आधुनिक प्रगतिवादी रचनाकारों एवं दलित साहित्यकारों का समाज दर्शन, सभी ने समाज की चेतना का अपने-अपने दृष्टिकोण से अनुभव किया।"⁶⁸

अन्याय, कुरीतियों, शोषण और अत्याचार आदि बुराईयों की उपेक्षा करना वास्तव में साहित्यकार की कर्तव्य विमुखता है। मुनेश्वर प्रसाद का मत है - "किसी भी सृजनशील व्यक्तित्व का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने युग और परिवेश से कितना जुड़ा हुआ है और उसके लिए कितना चिंतनशील है। उनका जन संबंध कितना वास्तविक और बुनियादी है। उसके सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों तथा मानवीय संवेदनाओं का धरातल कितना ठोस है।"⁶⁹ साहित्यकार अपने अतीत और वर्तमान दोनों उदभाव का उपासक है, युग के साथ भी है और युग से अलग भी।

साहित्य समाज में व्याप्त धार्मिक साम्प्रदायिक उन्माद, असमानता, आशा-निराशा, संशय और भ्रम के बीच तमाम त्रासद अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब बनाती है। साहित्यकारों को अपने युग की परिस्थितियों को आत्मसात् कर लेखन में इन विषयों का चयन करना चाहिए। डॉ. शिवदानसिंह चौहान का मत है कि-"शोषित-पीड़ित जन साधारण की प्रगतिशील, मुक्तिकामी आकांक्षाओं और संघर्षों, उसके दुःख-दर्द को कलात्मक अभिव्यक्ति देना, अन्यायपूर्ण मानव संबंधों, जर्जर रूढ़ियों, नैतिक मान्यताओं और अबुद्धिवादी विचार पद्धतियों की खुलकर आलोचना करना।"⁷⁰ वास्तव में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् परस्पर अभिन्न है। किसी भी श्रेष्ठ साहित्यिक कृति में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का समन्वय होता है।

निष्कर्ष

साहित्य समाज को दिशा देने का कार्य करता है। हमारा साहित्य जितना सशक्त, उन्नत एवं समृद्धशाली होगा तो हमारा समाज भी उतना ही प्रगतिशील, उन्नत तथा समृद्ध होगा। समाज, राजनीति, सत्ता, आम-जनता की सक्रियता- निष्क्रियता, शोषणकारी, व्यवस्था आदि सभी को साहित्यकार को अपना निशाना बनाना चाहिए। रचनाकार को अपने समय की असमानताओं, भावनाओं और राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को आत्मसात कर अपनी रचना के विषयों का चयन करना चाहिए। साहित्य ही व्यक्ति एवं समाज को उन्नत कर राष्ट्र का गौरवान्वित फल प्रदान कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य: राम अवतार शर्मा, नई दिल्ली, पृ. 45
2. वही, पृ. 45
3. लोक जीवन, परंपरा और साहित्य: डॉ. अमित शुक्ल, वीणा पत्रिका, दिसम्बर 2009, पृ. 13
4. मधुमती पत्रिका, रचना, रचनाकार और आलोचक: प्रो. शलभ, अक्टूबर, 2010, पृ. 16
5. कबीर साहित्य की प्रासंगिकता: डॉ. श्यामनंदन किशोर, पृ. 24
6. अक्षर शिल्पी पत्रिका, आधुनिक लेखकों का उतरदायित्व: आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जुलाई-सितम्बर 2010, पृ. 11
7. समाज और संस्कृति: डॉ. सावित्री चन्द शोभा, पृ. 1
8. हिन्दी साहित्य चिंतन: सं. सुधाकर पांडेय, कला मंदिर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ. 88
9. समकालीन अभिव्यक्ति पत्रिका, धूमिल की कविताओं में युग बोध: मुनेश्वर प्रसाद, अक्टूबर-दिसम्बर, 2009, पृ. 25
10. कृति और पत्रिका, लेखक की स्वतंत्रता और प्रतिबद्धता: डॉ. शिवदान सिंह चौहान, जुलाई-सितम्बर 2009, पृ. 41

Dear Author

Please Provide Aim of the Study, Review of Literature for this Paper .